**International Journal of Multidisciplinary Research and Development**
**Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72**
**www.allsubjectjournal.com**
**Volume 4; Issue 6; June 2017; Page No. 192-194**

# अवतारवाद: भारतीय धर्मानुसार

**Dr. Tripti Sharma**
Assistant Professor, Hindu Girls College, Sonipat, Haryana, India

**प्रस्तावना**

भारत में धर्म की भूमिका प्रधान रही है। वह इस देश की सभ्यता–संस्कृति ही नहीं वरन् जीवन–पद्धति की भी आधार शिला है। हिन्दू विभिन्न देवों की शरण में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति की कामना के लिए जाते हैं। अवतारवाद सनातन धर्म के आधार स्तंभ रहे हैं। अवतार की भावना विश्व के सभी धर्मों द्वारा मानी जाती है किंतु भारत में यह भावना बहुत प्रमुख है। सभी धार्मिक सुधारक किसी न किसी देवी शक्ति के अवतार माने गये हैं। अनेक देवों के अवतार पृथ्वी पर हुए किंतु उन सबमें विष्णु के अवतार सर्वप्रमुख एवं सर्वप्रसिद्ध है। सृष्टि के पालनकर्ता के रूप में विष्णु पृथ्वी पर देवी तथा मानवी इन दो रूपों में अवतरित हुए। ऋग्वेद में भी विष्णु क्रियांत्मक देवता माने गये है।[1] इसी से इस क्षेत्र में विष्णु का ही प्राधान्य है। भागवत पुराण हरि के असंख्य अवतार बतलाता है। उसकी गणना करना असंभव है।[2] देवता,ऋषि, मनु, प्रजापति और सब प्राणी उन्हीं के अंश हैं, फिर भी अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी का भार उतारने के लिए विष्णु युग–युग में विशेष रूप धारण करते हैं और वे उनके विशिष्ट अवतार हो जाते हैं।

सृष्टि का सदैव यह नियम रहा है कि जब संसार पर किसी प्रकार का कष्ट आता है और धरती दुर्जनों के अत्याचारों से पीड़ित हो जाती है, तब विश्वरूप सर्वात्मा संसार का हित करने के लिए अपने शुद्ध सत्तवांश से अवतरित होकर पृथ्वी पर धर्म की स्थापना करते हैं :

'सर्वथैव जगत्यर्थे स सर्वात्मा जगन्मय:।
सत्तवांशेनावतीर्योव्र्या धर्मस्य कुरुते स्थितिम्।।'[3]

वे लीला से अवतार धारण करते हैं और अपनी योगमाया का आश्रय लेकर स्वच्छंद लीला करते हैं। अपने को अवतार विशेष के आवरण में छिपाये हुए वे उसी के समान प्रतीत होते हैं।[4] पृथ्वी का भारत उतारने के लिए वे नट के समान अनेक रूप धारण कर अंत में इसका परित्याग कर देते हैं।[5] भक्तों की इच्छा से माया का आधार लेकर वे जो रूप धारण करते हैं वही सत्य प्रतीत होता है।[6] इस प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार लेकर लोकों का पालन तथा विश्व के द्रोहियों का संहार करते हैं। अवतारों के द्वारा वे प्रत्येक युग में धर्म की रक्षा करते हैं। अत: अवतार का मुख्य उद्देश्य है धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश।[7]

सायण के अनुसार रक्षणार्थक 'अव' धातु से लट् के स्थान में शतृ आदेश करके उसमें प्रकर्ष अर्थ तें 'तरप्' प्रत्यय से यह शब्द बना है। पाणिनि की अष्टाध्यायी 3.3.320 में 'अवेतृस्रोर्घण' सूत्र मिलता है। पाणिनि ने अवतार को 'अवार: कूपादे:' के रूप में उदहृत् किया है। यहाँ अवतार शब्द का अर्थ कुऐं में उतरने के अर्थ में किया गया है।

ऋग्वेद[8] में 'अवतारी' शब्द का प्रयोग हुआ है। सायण के अनुसार इस मंत्र का अर्थ है हे इन्द्र! तू इन मेरी स्तुतियों से शत्रु सेनाओ की हिंसा करती हुई मेरी सेना की रक्षा करते हुए शत्रु के कोप को नष्ट कर दो और इन स्तुतियों से ही यज्ञादि कर्म के लिए पूजन करने वालों के आंतरिक, विघ्न और संकट का नाश करो –

अभि: स्पृधो मिथतोररिष्ण्यन्न मित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
अभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरायार्थ विशोअवतारौर्दासी:।।

सायण ने दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'अवतारी' का तात्पर्य 'अंतराय', 'विघ्नद्व या 'संकट' से लिया है।

यज्ञादि कर्मकृति यजमानायावतारौ: विनाशय।

'यज्ञ कर्म के लिए पूजन करने वालों को अंतराय से पार करो।' इस अर्थ के अनुसार विष्णु के पूर्ववर्ती अवतार कार्य से इस शब्द का कुछ साम्य दिख पड़ता है। क्योंकि विष्णु का अवतार भी संकट से मुक्त करने के लिए होता रहा है। अत: इस शब्द के भावार्थ के अनुसार यह अनुमान किया जा सकता

है कि इन्द्र जिस प्रकार यज्ञादि कर्म करने वाले यजमानों का विघ्न नष्ट करता रहा है। उसी प्रकार बाद में विष्णु को यह कार्य मिला। सम्भवत: इसी से उनके मानवरूप को अवतार कहा गया।

अवतारी के अनन्तर –'अवतृ' से ही बनने वाला एक दूसरा शब्द 'अवत्तर' है, जो अर्थववेद में मिलता है –

> उपद्याम वेतसम्, अवत्अतर: नदीनाम्।
> अग्ने पित्तम अयाम असि।[9]

सायण के अनुसार 'अत्यंत रक्षण में समर्थ जिसमें सारभूत अंश हो वही अवतार कहा जाता है –

> अवत्तर: अतिशयेन अपन् रक्षणसमर्थ: सारभूतांशो विद्यते।[10]

अवतारवाद में मुख्य प्रयोजन रक्षा रहा है। इस विचार से 'अवत्तर' का भावार्थ अवतारवाद की सीमा से परे नहीं है।

'अवतर' शब्द का प्रयोग शुक्ल यजुर्वेद से हुआ है –

> उप ज्मन्तुप वेतसेअवतर। अन्ने पित्तमपामसि मण्डूकि तामिरा गहि सेमं नो यज्ञं पावक वर्ण शिवं कृधि।।

इस मंत्र में प्रयुक्त 'अवतर' प्राय: उतरने का अर्थ में गृहित हुआ है। अवतारवादी साहित्य में अवतार का अर्थ उतरना भी किया जाता है।

विष्णु पुराण में 'अवतार' शब्द विष्णु की उत्पत्ति या जन्म बोधक शब्द के रूप में प्रस्तुत हुआ है।[11]

प्रारंभ में 'अवतार' का प्रयोग उतरने के अर्थ में होता है। कालांतर में विष्णु के जन्म, प्रादुर्भाव एवं अंशोद्भव से इसका संबंध हुआ। गीता के बारह अध्यायों में अवतार के दार्शनिक सिद्धांतों को प्रस्तुत किया गया है। केवल ज्ञान–कर्म, सन्यास व योग पर विचार करते हुए गीता के चौथे अध्याय में अवतारवाद का उल्लेख किया गया है। गीता के 4.7–8 में अवतार के प्रयोजन का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वह धर्मोत्थान या धर्म की संस्थापना, साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश के निमित्त युग–युग में स्वयं आविर्भूत होता है। उसके जन्म और कर्म दोनों को यहाँ दिव्य या मनुष्येत्तर माना गया है।

> यदा–यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यअहम् ।
> (गीता)
> परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे–युगे।

अवतारवाद ने भारतीय धर्म में कई कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों को प्रोत्साहित किया है। इनकी अलौकिक शक्ति भारतीय धर्म में सर्वमान्य है। अवतारवाद भारतीय धर्म की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भारतीय धर्म के मूल में निहित 'अवतार रूप में देवता को देखने की प्रथा' का वास है। भारतीय धर्म के आराध्य देव भगवान विष्णु ने समय–समय पर नानारूपों में पृथ्वी पर अवतार लिया था। विष्णु के अवतारों के बीज हमें वैदिक साहित्य में ही मिलते हैं। वामन रूप का विष्णु से संबंध तो प्रारंभ से ही साहित्य में सीधा विष्णु से संबंध नहीं निश्चित हो पाया है। इनका तादात्म्य प्राय: प्रजापति से स्थापित किया गया है जब आगे चलकर विष्णु एकमात्र भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब सबको उन्हीं का रूप माना जाना स्वभाविक है। अवतार भारतीय धर्म तथा संस्कृति के प्रधान अंग हैं, जिनके सहारे इस धर्म ने अपना पालन–पोषण किया।

अतएव प्राचीन भारतीय धर्म–दर्शन के अंतर्गत अवतारवाद की धारणा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में अवतारवाद का अत्यंत घनिष्ठ संबंध पुनर्जन्मवाद और कर्मवाद के दार्शनिक सिद्धांतों में है। अधिकांश भारतीय दर्शन प्रणालियों में इस मत को स्वीकार किया गया है कि शुभ, अशुभ कर्मों के आधार पर व्यक्ति पुनर्जन्म लेता है और जब वह दिव्यज्ञान के आधार पर कर्म–बंधन से मुक्त हो जाता है, जब उसे मोक्ष प्राप्त होता है। अत: स्पष्ट है कि सामान्य मनुष्य पुनर्जन्म लेता है, परंतु ईश्वर पुनर्जन्म न लेकर, अवतरित होता है। सामान्यतया ईश्वरीय सत्ता का अवतार मानवता के परित्राण के लिए और दानवता के विनाश के लिए होता है। भारतीय धर्म–दर्शन का एक महत्वपूर्ण वाक्य है, 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।' इस आदर्शवाक्य का सम्यक् स्फुटन हमें भारतीय संस्कृति में प्राप्त अवतारवाद की धारणा में दिखाई देता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. ऋग्वेद, 6.4.11
2. अवतारा ह्मसंख्येया हरे: सत्वनिधेर्द्रविजा।
   यथाविदासिन: कुल्य: सरस: स्यु सहस्रश:।। – श्रीमद्भागवत, (1.3.26)
3. विष्णुपुराण, 5.1.32
4. श्रीमद् भागवत्, 1.1.20

5. यथानटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो।–श्रीमद्भागवत, 8.3.6
6. श्रीमद् भागवत्, 3.25.3
7. श्रीमद् भागवत्, 7.1.38
8. ऋग्वेद, 3.25.2
9. अर्थववेद, 18.3.5
10. अर्थववेद, 18.3.5 सायण भाष्य
11. विष्णु पुराण 5.1.60